# पडयणि अनुष्ठान

श्वेता टी. पी

शोध छात्रा

हिन्दी विभाग

कालिकट विश्वविद्यालय

केरला

"अनुष्ठान, मनुष्य के विविध भावों के प्रतिरूपात्मक प्रस्तुति है।"१ यह समाज की एकता और समानता के लिए उपयोगी है। समाज के लोगों को एकजुट रखने के लिए और उनकी सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए अनुष्ठान काम आता है। यह सर्वविदित है कि मनुष्य का सामाजिक जीवन प्रकृति के बहुत करीब रहकर शुरू हुआ था। प्रकृति तथा उसके संसाधनों की आराधना करना और उसको भगवान के रूप में पूजा करना उस समय लोगों की आदत थी। अनुष्ठानों का स्थान मनुष्य के जीवन में इसके लिए भी रहता है कि अपने समाज की व्यवस्था, उसके रीति-रिवाज, नियम कानून, तथा रूढ़ियों को वे कायम रख सके। अनुष्ठान, मंत्र-तंत्र तथा क्रिया कर्मों के साथ रहनेवाला साधन है। लोगों का विश्वास यह है कि अनुष्ठान उनके जीवन के पापों का निवारण, रोग मुक्ति तथा अभिवृद्धि के लिए सहायक होता है।

केरल राज्य अनेक अनुष्ठान– कलाओं के लिए प्रसिद्ध है। इन कलाओं के द्वारा समाज के निम्न जाति के लोगों की एकता लक्ष्य की गई थी। अपने सामाजिक यथार्थ का चित्रण इन कलाओं के द्वारा उन्होंने प्रस्तुत किया था और उसकी व्यवस्था तथा नियमों को सुदृढ़ भी बना दिया था। समय के गुजर जाने के बावजूद चाहे इन कलाओं में कई बदलाव आए हैं फिर भी तेय्यम, तिरा, तीयाटु, पडयणि, पूरक्कली, कुरुंदिनीपाट्टू जैसी अनुष्ठान कलाएँ आज भी आम लोगों की एकता और उनकी परंपरा तथा संस्कार को जीवंत रखने केलिए काम आती हैं। इनका मूल उद्देश्य समाज की सुरक्षा भी रहा था।

केरल के ज्यादातर अनुष्ठान कलाएँ ' दारिक वध' की कथाओं और पुराणों के आधार पर तैयार की गयी है। पडयणि भी, इस प्रकार, पुराण पर आधारित कथा के द्वारा बनाया गया अनुष्ठान है।

**पडयणि**

'पड़ेनि' या ' पडयणि' का संदेश, अंधेरे पर रोशनी की जीत है। यह चौसठ कलाओं का एक सम्मिलित रूप है। इसका सादृश्य नाटक के साथ है और यह फसल की कटाई के अवसर पर आयोजित किया जाता है। इसमें लोगों की एकता की शक्ति और सौंदर्य को प्रदर्शित करने का मौका मिलता है। इसकी विशेषता यह भी है कि सभी जाति के तथा वर्ग के लोग इसमें भाग लेते हैं। पत्तनमतिट्टा, आलप्पुष़ा जैसे मध्यतिरुवितांकूर के प्रदेशों में इस कला का ज्यादा प्रचलन है। इसको यहाँ 'अनुष्ठान-नाटक' कहकर पुकारते हैं।२ आर्यों के आने से पूर्व ही केरल में पडयणि की उपस्थिति रही थी।

पहले दक्षिण केरल की समाजिक व्यवस्था में जातिवाद शक्तिशाली ढंग से रहा था और इस बुरी रीतिरिवाज से मुक्ति का आह्वान पडयणि में अवतरित 'कोलम'(विभिन्न रूपों का वेश) तथा उससे जुड़े चरित्रों के द्वारा किया जाता था। पडयणि ग्रामीण मिथक और पुराणों से समृद्ध भी है। 'दारिक' कथा पडयणि में अत्यन्त भाव तीव्रता के साथ प्रस्तुत करती हुई पायी जाती है।

प्राचीन केरल में 'गणक' नाम की एक जाति रही थी। इसकी एक उपजाति है 'कणियान'। इस जाति के साथ एक नृत्य रूप रहा था। माना जाता है कि इस नृत्य रूप से पडयणि का उत्भव हुआ है। इसका आयोजन आदमी में भूत प्रवेश से मुक्ति केलिए किया जाता था। भूत प्रवेश से पीड़ित व्यक्ति को 'पिणियाळ' कहा जाता है। पिणियाळ को उन कलाकारों के बीच बिठाया जाता है जो 'कोलम' धारण कर मंच पर आते हैं। मंत्रों का उच्चारण करते हुए ये कलाकार पिणियाळ के चारों ओर नृत्य करते हैं। गणक जाति के लोग आज भी 'कोलम तुल्लल' ( कोलम के साथ नाचना) में माहिर है। कई विद्वानों का यह मानना है कि गणकों का इसके साथ गहरा संबंध है।

पडयणि के उद्भव को लेकर दूसरा एक मत भी प्रचार में है। इसमें यह माना जाता है कि पडयणि, 'कळरि' (केरल का एक आयोधन कला) के आचार्य गण जो कणियार, पणिक्कर ( एक जाति) नाम से जाना जाता है वे नायर( और एक जाति) के युव शिष्यों के साथ मिलकर करने वाला एक अभ्यास है। आज पडयणि के कलाकार की भूमिका नायर युवा लोग निभाते है जबकि वेशभूषा तथा गीत संगीत की तैयारी गणक जाति के लोग करते हैं। लेकिन यह कला कब , क्यों, कहाँ और किसलिए शुरु हुआ इसके बारे में पूर्ण रूप से सूचना अब तक नहीं मिली हैं। पडयणि की कुछ शैलियाँ पुराने युद्ध तथा कळरी की कुछ शैलियों के साथ मेल खाती है। कळरि में पडयणि भी सिखाया गया था। कळरि के विकास के साथ साथ पडयणि का भी विकास हुआ था।

**इतिहास**

यह माना जाता है कि पडयणि द्राविड़ों के अनुष्ठानों में एक है। इसका प्रोत्साहन नवजागरण काल मे हुआ था जिसको बौद्ध धर्म के अनुयायियों के द्वारा किया गया था। इसका इतिहास यह बताता है कि इसमें शैव दर्शन का प्रभाव रहता है। पहले इसमें द्राविड़ों का प्रभाव रहा था बाद में इसमें बौद्ध धर्म का प्रभाव आया।

इतिहास से यह पता चलता है कि आठवाँ सदी से लेकर सोलहवाँ सदी तक केरल के कुट्टनाडु, आलप्पुषा, पत्तनमतिट्ट आदि भौगोलिक प्रदेशों में बौद्ध धर्म का काफी प्रभाव था। केरल में 'चेरा' नाम का एक राजवंश था। इस वंश का राजा 'पल्लि बाणप्पेरूमाल' आर्यों के आक्रमण से बचकर कुट्टनाडु आये थे। उन्होंने ही केरल में बौद्धों के सारे अनुष्ठानों एवं कलाओं और आचारों को प्रोत्साहन दिया था|३ नीलम्बेरूर आलप्पुषा जिला का एक गाँव है जहाँ पल्लिबाण पेरुमाल आए थे और अनेकों मंदिरों तथा मठों की स्थापना भी की थी। आर्यों के आक्रमण के खिलाफ जागरण के रूप में उन्होंने पडयणि का आयोजन किया था। यह त्योहार उनके प्रशासन का प्रकटन माना जाता है।

केरल के मध्य तिरुविताम्कूर के देवी मंदिरों का और पहाड़ी प्रदेशों का पडयणि के इतिहास से गहरा संबंध है। संघकाल (छटवी सदी ईसा पूर्व से तीसरी सदी ईसा पूर्व तक के समय) के लोग 'कोट्टवै' (देवी की नाम) की आराधना करते थे।४ बाद में कोटवै को काली माँ( भद्रकालि रूप) से संबोधित किया गया। यह इस बात का सबूत है कि ग्रामीण जीवन में ईश्वर की आराधना में माँ का

संकल्प महत्वपूर्ण है। माँ के रूप में देवी की आराधना कावु( मंदिर) में होने लगी। कहा जाता है कि कावु बौद्ध मठ का रूपान्तर है। बाद में वृक्षों के नीचे और गुफाओं के आसपास की जगह पडयणितुल्लल के लिए मंच बन गई| आज भी पडयणि का गहरा संबंध इन बरगदों के छाव और इन गुफाओं के परिवेशों से रहता है।

**पडयणि के चरित्र एवं दन्त कथाएँ**

असुर राजा दारिक का वध शिवपुत्रि भद्रकालि से हुआ। पडयणि के दंतकथा इसी पौराणिक कथा पर आधारित है। दारिक की पत्नि युद्ध के समय ब्रह्मा से प्राप्त मृत्युंजय मंत्र का जाप करती है। इसके कारण दारिक को युद्ध में हराना नामुमकिन था। सभी देव देवता महाविष्णु से प्रार्थना करते हैं कि उन्हें इस संकट से निकलने का एक उपाय दें। महाविष्णु के आदेशानुसार वे शिव से जाकर अपना अनुरोध प्रकट करते हैं और दारिक वध के लिए शिव अपनी पुत्रि भद्रकालि को नियुक्त करते हैं। यह जानकर कि अगर दारिक की पत्नी यह मंत्र किसी और को बता दिया तो उस मंत्र की शक्ति नष्ट हो जाएगी, इसलिए कालि एक ब्राह्मण स्त्री का रूप धारण कर सेवक बनकर दारिक की पत्नी से मंत्र प्राप्त करती है। इस प्रकार दारिक वध में कालि सफल होती है।

दारिक वध के बाद अत्यन्त क्रोध के साथ रुद्र ताण्डव करते हुए कैलास में कालि प्रवेश करती है। कालि के क्रोध को शान्त करने केलिए भगवान श्री मुरुकन को एक नया उपाय ढूँढना पड़ा। उन्होंने प्रकृति की जडी बूटियों से हरा, लाल, हल्दी, काली आदि रंग के रस निकाले जिनसे ताड के पेड़ के भूसा पर विभिन्न प्रकार के रूप बनाए और उसे पहनकर कालि के सामने नाचने लगे। रंगों के चमत्कार से आकृष्ट होकर कालि का क्रोध धीरे धीरे कम हो गया और वह उस नृत्य में मग्न हो गई। इस मिथक के अनुसार ही पडयणि में कोलम तुल्लल (वेष पहनकर नाचना) मनाया जाता हैं।

केरल की अन्य अनुष्ठान कलाओं की तुलना में पडयणि में चरित्रों की संख्या अधिक है। इसके चरित्रों में देवी देवताओं के साथ साथ प्रकृति तथा मनुष्य भी शामिल हैं। गाँव के कुलदेवता 'काविलम्मा', 'भैरवि कोलम' के रूप में मंच पर आती है। पहाड़ों को ईश्वर के रूप में माना जाता है और आराधना भी की जाती है। काञ्चिरप्पारमला, तलप्पारमला, कोट्टप्पारमला ( पहाड़ों के नाम) आदि चरित्र इसके लिए उदाहरण है।

**कोलम (वेश)**

देवी के क्रोध को शान्त करके उसका आशीर्वाद तथा वरदान प्राप्त करने के लिए पडयणि में कोलमतुल्लल ( वेश पहनकर नाचना) का आयोजन होता है। अलग-अलग मिन्नतों के लिए अलग-अलग कोलम( वेश) तुल्लल आयोजित किए जाते है। कोलम जो भी हो, यह लोगों के दुख दुविधाओं को दूर करने केलिए है और अपने जीवन में अभिवृद्धि प्राप्त करने के लिए है।

गणपति , मरुता, सुन्दरयक्षि, अन्तरयक्षि, अरक्किकयक्षि, कालयक्षि माययक्षि, पिशाच्, माडन, कालन, भैरवि आदि अनेक कोलम प्रचलन में है जो तप्पु ( एक प्रकार के संगीत का उपकरण) तथा गीत के ताल के साथ मंच पर प्रकट होते हैं। सभी कोलम में एक सामान्य तत्व यह है कि मुकुट भूसा से बनता है और कलाकार को ताड के पत्ते से सजाया जाता है| इसमें सिर्फ प्राकृतिक रंगों

का इस्तेमाल होता है। कोलमतुल्लल  का पहला रूप गणपति कोलम है। देवी माता का रूप को 'मरुता' कहते हैं। चेचक जैसी महामारियों केलिए इन देवताओं की आराधना की जाती है। कालकेशि मरुता, करिमरुता, पण्डारमरुता, तल्लमरुता, पिल्लमरुता, आदि यहाँ के परंपरागत कोलम है, जिनमें से कुछ कोलम अब तक गायब हो चुके है।'यक्षि कोलम' रोग निवारण के लिए मनाया जाता ही। पडयणि में आन्तरयक्षि, आरयक्षि, कालयक्षि, आदि कोलम प्रमुख है। 'पक्षि कोलम' भीभत्स रस का द्योतक हैं।'कालन कोलम' में अभिनय का महत्व रहता है। इसमें एक ही कलाकार अनेक पात्रों का अभिनय करता है। सही प्रशिक्षण तथा व्रत निष्ठा इसके कलाकारों के लिए जरूरी है। यह कोलम मार्कण्डेय की कहानी पर आधारित है। अद्भुत नृत्य तथा ताल के साथ इसकी प्रस्तुति होती है।

**कृषि एवं सामाजिक प्रासंगिकता**

प्रचलित मिथक और विश्वासों से हटकर पड़यणि को देखा जाए तो समाज कल्याण की प्रक्रिया में पड़यणि की अहम भूमिका रहती है। 'दारिक' अंधेरा या बुराई का प्रतीक है। कालि की उसपर विजय, भलाई की जीत का संकेत  है। पडयणि मनुष्य में निहित विनाशवादी बुद्धि को तोड़कर आनंद और समृद्धि की ओर की यात्रा तय करता है।

शक वर्ष के फालगुण – चैत्र के महीनों में पडयणि का आयोजन होता है। यह बारह दिनों तक चलता है। पडयणि  के द्वारा समाज को किसी भी कठिनाई का सामना साहस के साथ करने की मानसिक और शारीरिक शक्ति प्राप्त होती है। अक्सर कटाई तथा बोवाई के बीच के समय में पडयणि  का आयोजन होता है। इसमें अच्छे फसल की प्रप्ति और खेती की सुरक्षा केलिए सूर्यभगवान से प्रार्थना करते हैं।  पडयणि के दौरान शोर मचाकर मशाल जलाकर जंगली जानवरों को भगाया जाता है और खेती की रक्षा की जाती है। शोर मचाने के कारण वायु मण्डल में हलचल पैदा होती है जिसके कारण कीटाणुओं का नाश होता है। जलते आग और उसकी धुआ से महामारी के जीवाणुओं का नाश भी होता है | ये सारे वैज्ञानिक तत्व पडयणि के अनुष्ठानों के पीछे छिपे रहते है।

वास्तव में पहाड़ी लोगों  की दुविधा के निवारण केलिए पडयणि का उद्भव हुआ था, फिर यह सामाज के कल्याण का मार्ग बना। लेकिन आज उसकी स्थिति दयनीय है। समय के चंगुल में फँसकर पडयणि आज केवल इने गिने स्थानों तक सीमित हो गयीहै। जिन मंदिरों में आज पड़यणि का आयोजन होता है वहाँ  उसका पूर्ण रूप प्रस्तुत नहीं  हो पाता है। प्रतिभाशाली कलाकारों की कमी तथा तप्पुमेलम जैसी संगीत के कलाकारों की कमी और पडयणि के वेशभूषा और प्रस्तुति में उदासीनता के कारण पडयणि आज अपना महत्व खो चुका है। मगर आज भी कुछ ऐसे कलाकार हैं, जो अपनी परंपरा और रूढि तथा अपनी हुनर के साथ पडयणि को जिंदा रखने की कोशिश करते हैं। इनके सहारे सही दिशा में अनुसंधान तथा अध्ययन करने पर केरल के इस अन्मोल कला को हम बचा सकते हैं और इसके द्वारा केरल के इस अनोखे अनुष्ठान कला की परंपरा को भी |

.....

१. Radicliff. A. R brown, structure and function in primitive society,p.157
२. Padayanikolangalude bhaavateevrata, Dr. N. K. Muralidharan, p.49
३. Thottampaattukal oru padanam, Vishnu. Namboodiri N.M, p.92

.....

**संदर्भ ग्रंथ सूचि**

१. पडेनि, वासुदेवनपिल्ल कडम्मनिट्ट
२. A social history of India, Sadasivan S N
३. पडयणि कोलङलुडे भावतीव्रता, डॉ. एन के . मुरलीधरन